39

एक ओंकार सतिगुर प्रसादि ।।

धर्म चलावन सन्त उबारन ।
दुसट सबन को मूल उपारन ।

धर्म हेत गुरुदेव पठाए

39.

...oOo...

गुरु नानक मिशन अंक संख्या ३६

...oOo...

मूल्य : १२ पैसे

धर्म हेत गुरदेव पठाए

यह ट्रैक्ट पंजाबी में जनवरी १९६७ में छपा था। उस ट्रैक्ट के पहले भाग का हिन्दी अनुवाद पेश है।

अनुवाद ज्ञानी अमर सिंह जी ने किया है।

मुद्रक	पहली बार	प्रकाशक
आरसी प्रेस	१०००	नरायण सिंह
पटियाला	दिसम्बर १९६८	सेक्रेटरी

अब मैं अपनी कथा बखानो।
तप साधित जिह बिधि मोहि आनो।......

तह हम अधिक तपस्या साधी।
महाकाल कालिका आराधी।
इह बिधि करत तपस्या भयो।
द्वय ते एक रूप ह्वै गयो।

अकाल पुरख बाच—

'मैं अपना सुत तोहि निवाजा।
पंथ प्रचुर करिबे को साजा।
जाहि तहा तै धर्म चलाइ।
कुबुद्धि करन ते लोक हटाइ।......

इह कारण प्रभ मोहि पठायो।
तब मैं जगत् जनम धरि आयो।

('विचित्र नाटक' गुरु गोबिन्द सिंह जी)

उक्त पंक्तियों में प्रतिपादित हुई है—आज से तीन सौ वर्ष पूर्व की एक कथा, श्री गुरु गोबिन्द सिंह को 'आत्म कथा' जिसे आप ने अपने 'विचित्र नाटक' नाम के महा काव्य ग्रन्थ में लिखा।

इस संक्षेप गुरुवाणी के पाठ से हमें तीन विशिष्ट बातें विदित होती है—

(१) गुरु जी एक महान् तपस्वी थे। आपने दीर्घकाल पर्यन्त कठोर साधना में प्रवृत्त रह कर परब्रह्म वाहिगुरु का चिन्तन किया, जिसका सफल परिणाम यह हुआ कि आप में और परमेश्वर में कोई भेद न रह गया, (द्वय से एक रूप हो गये।)

(२) ऐसी उच्चतम आत्मिक अवस्था में परमेश्वर ने आप को आदेश दिया कि 'तुम संसार में जा कर ऐसा मार्ग चलाओ, जिस से संसार के लोगों में धर्म की वृद्धि हो और अधर्म तथा कुबुद्धि का विनाश हो।

(३) उक्त आदेश के अनुसार, गुरु जी ने बताया है, कि मैं मनुष्य जन्म लेकर इस संसार में आया हूँ—

याही काज धरा हम जनमं।
समझ लेहु साधू सब मनमं।
धर्म चलावन सन्त उबारन।
दुसट सभन को मूल उपारन।

(विचित्र नाटक)

यह है आप की आत्मिक-परंपरा, आप के इस संसार में आगमन पृष्ठ-भूमि। इसी के आधार पर निर्माण हुआ, आपका दृष्टि-कोण, आप की विचारधारा अथवा आप का समग्र जीवन-दर्शन।

और आओ! अब अवलोकन करें, श्री गुरू गोबिन्द सिंह जी की वंशानुगत शारीरिक-परंपरा—

महा बलिदानी पिता का पुत्र

आप की नसों में बाबा बकाला ग्राम के तपस्वी श्री गुरु तेग बहादुर का रक्त प्रवाहित था, जिस ने हिन्दू-धर्म की सभ्यता व संस्कृति के प्रतीक—तिलक और जंजू (यज्ञोपवीत) की रक्षा के निमित्त अपना 'सीस दिया पर सिरर न दीया' था।

परोपकारी-योद्धा पितामह का पौत्र

आप के पितामह थे महाबली श्री गुरु हरिगोबिन्द जी, मीरी-पीरी के मालिक, जो श्री गुरु तेग बहादुर के पिता थे। गुरु हरि गोविन्द के विषय में कहा गया था—

'दल भंजन गुरु सूरमा बड जोद्धा बहु परउपकारी'

अपूर्व बलिदानी प्रपितामह

और आप प्रपौत्र थे—शिरोमणि-शहीद श्री गुरु अर्जुन देव के, गुरु हरगोविन्द जिन के एक-मात्र पुत्र थे। जिनकी उपमा में एक तत्कालीन कवि मथुरा जी ने लिखा है—

'भनि मथुरा कछु भेद नहीं गुरु अर्जनु परतख्य हरि।'

प्रपितामह के पिता

गुरु अर्जुन देव के पिता थे श्री गुरु रामदास जी, अमृतसर 'सरोवर' और 'नगर' के निर्माता। जिनके विषय में निरूपण किया गया था—

'जिह पिखत अति होइ रहसु मनि,
सोई संत, सहार गुरु रामदास।'

प्रपितामह के नाना

गुरु गोविन्द सिंह के शहीद-प्रपितामह श्री गुरु अर्जुन देव, दोहिता (नाती) थे, श्री गुरु अमर दास के, जिनकी सेवा से संसार के लोगों के दुःख-दारिद्र की निवृत्ति होती है—

'गुरु अमर दास जिन परसिअउ तिन दुख दरिद्र परहरि परै।'

उक्त परंपरा से सिद्ध होता है कि शारीरिक-दृष्टि से भी आप के शरीर में पांच अध्यात्म-चेता सत्पुरुष-सद्गुरुओं की दिव्य छटा प्रकाशित थी।

यद्यपि गुरु गोविन्द सिंह महाराज की यह आत्मिक और शारीरिक परंपरा तथा जगत् में जन्म लेकर आने के विषय में निरूपित आप की पूर्वोक्त वाणी आप के व्यक्तित्व की महानता का प्रत्यक्ष प्रमाण हैं, तद्यपि अब आओ! हम इस सन्त-सिपाही सद्गुरु की साधना पर भी एक दृष्टि डाल कर देख लें, कि धर्म-मार्ग को चलाने के लिये—अकाल-पुरुख ने जो आप का चुनाव किया, तथा आप की इस विशिष्ट पद पर नियुक्ति द्वारा आप पर जो भरोसा प्रकट किया था, वह आप ने कहां तक पूरा कर दिखाया—

जिस जीवन मार्ग को चलाने का आदेश आप को परमेश्वर की ओर से मिला था, उस के अनुसार कार्य का आरम्भ करने से पूर्व आप ने उस का एक 'रेखा-चित्र' तैयार करना चाहा। किन्तु उस की तैयारी के लिए भी यह अनिवार्य किया कि आप अपने से पूर्व इस कार्य के निमित्त संसार में आने वाले धर्म प्रवर्त्तकों की कार्य-पद्धति और उन की योजनाओं से भली प्रकार परिचित हों। जिस से आप को यह मालूम हो गया होता

कि उन धर्म संचालकों द्वारा प्रचलित जीवन मार्गों में क्या-क्या त्रुटियां थीं, जिन को पूरा करने के लिये संसार में आप को भेजा जाना जरूरी समझा गया। इस विषय में गुरु जी की अपनी रचना 'विचित्र नाटक' में इस प्रकार लिखो है—

> जे जे भए पहिल अवतारा।
> आपु आपु तिन जाप उचारा।
> प्रभु दोखी कोई न बिदारा।
> धर्म कर्म के राहु न डारा।
> जे जे गौस अंबीया भए।
> मैं-मैं करत जगत ते गए।
> महा पुरख काहू न पछाना।
> कर्म-धर्म को कछू न जाना।

पुनः

> जिनि जिन तनिक सिद्धि को पायो।
> तिनि तिनि अपना राह चलायो।
> परमेसर किनहूं न पहिचाना।
> मम उचार ते भया दीवाना।

पुनः

> जो प्रभु साखि निमित्त ठहराए।
> ते ईहा आए प्रभु कहलाए।

गुरु जी द्वारा प्रतिपादित उक्त उदाहरण से मालूम होता है कि आप ने यह अच्छी तरह जान लिया था कि आप से पहले आने वाले धर्म-प्रवर्त्तकों में क्या-क्या त्रुटियां थीं, जिन के कारण वे 'प्रभु आदेश' का पालन करने में असफल रहे।

वे सब परमेश्वर द्वारा अपनी विशिष्ट पद पर नियुक्ति के अभिमान में अपनी यथार्थ स्थिति को भूल गए थे। उन्होंने अपने आप को, धर्म-संचालक अथवा धर्म प्रवर्त्तक समझना छोड़ दिया, वरन् एक अलौकिक एवं विलक्षण व्यक्तित्व के रूप में संसार में विख्यात हुए। किसी ने अपने आप को 'परमेश्वर का अवतार', किसी ने 'खुदा का एकलौता पुत्र' और किसी ने अपने आप को 'वाहिद (अद्वितीय) रसूल' कहा। उनकी इन गर्वोक्तियों का परिणाम यह हुआ कि संसार के लोग परमेश्वर की भक्ति को भूल गए और उन को अपनी पूजा आराधना में लग गए।

निराकार परब्रह्म (Impersonal God) के स्थान पर साकार-परमेश्वर (Personal God) की कल्पना हुई। जिस से व्यक्ति-पूजा, चित्र-पूजा एवं मूर्ति-पूजा का आरम्भ हुआ। निराकार ब्रह्म का अस्तित्व अवतार, रसूल तथा खुदा के एकलौते बेटे की कल्पना के पर्दे के पीछे छिप गया। वह परमेश्वर, किसी को 'श्री राम' और किसी को 'श्री कृष्ण' के मनुष्य रूप में दिखाई दिया और किसी ने उसे ऐसे खुदा के रूप में देखा जिस के पास पहुंचने के लिए केवल ईसा अथवा हजरत मुहम्मद की सिफारिश ही अनिवार्य थी। उक्त विचार-धाराओं के प्रचार का परिणाम यह हुआ कि धर्म के क्षेत्र में अनेक भगवान प्रकट हो गये। हिन्दुओं का भगवान राम और कृष्ण तक सीमित रह गया, ईसाईयों का खुदा 'यशु-मसीह का बाप हुआ, और मुसलमानों के लिये अल्लाह वह था जो केवल हजरत मुहम्मद की मध्यस्थता और वकालत को ही मानता है।

अनेकता में व्याप्त एक परमेश्वर की धारणा संसार से

विलुप्त हो गई। संपूर्ण मानवता के एक-मात्र पिता के स्थान पर अनेक पिता मान लिये गए। इन अनेक पिताओं के परिवार भी अनेक थे। इस तरह मानवता छिन्न भिन्न हो गई। वह उच्च आध्यात्मिक-भावना किसी में दिखाई न देती थी, जिस का उल्लेख श्री गुरु ग्रन्थ की वाणी में इस प्रकार किया गया था—

'सभे सांझीवाल सदाइनि तू किसै न दिसै बाहरा जीउ।'

गुरु गोबिन्द सिंह जी ने जगत् में प्रचलित इस संकीर्ण मत-वाद और उसके कारणों को भली प्रकार अनुभव कर लिया।

अकाल-प्रभु ने आप को 'अपना सुत' कह कर संसार में भेजा था तो भी आपने अपने व्यक्तित्व के विषय में स्पष्ट घोषणा की—

मोको दास तवन का जानो।
या में भेद न रंच पछानो।
मैं हों परम पुरुख को दासा।
देखन आयो जगत तमासा।

यह जगत् एक तमाशा है, एक नाटक है। आप ने इस तमाशे को अच्छी तरह देखा, उसकी जांच की तो आप को मालूम हुआ कि संसार के लोग भ्रान्ति में इस नाटक को, इस नाटक के पात्रों को सत्य मान बैठे हैं। इस नाटक में अवतार, पैगम्बर आदि विशेष व्यक्ति, जिनका कर्त्तव्य, संसार के लोगों में परमेश्वर के अस्तित्व का विश्वास उत्पन्न करना था, जो परमेश्वर का रूप धारण किये हुए एक अभिनेता-मात्र थे, किन्तु भ्रम वश वे सचमुच के परमात्मा समझे जाने लगे। इस तरह परमात्मा अनेक मान लिए गए।

विविध परमात्माओं के विविध भक्तों में परस्पर प्रति द्वंद्विता और प्रतियोगिता की भावनाएं उत्पन्न हुईं, तनाव बढ़ता गया, विविध मतवादी एक दूसरे के शत्रु हो गए धार्मिक विद्वेश यहां तक बढ़ा कि—

'सच किनारे रह गया खहि मरदे बाहमन मौलाने।'

(भाई गुरदास)

इस प्रतिद्वंद्वता को मिटाने का प्रयत्न गुरु जी ने आरम्भ किया। तमाशे में उलझे और परस्पर विवाद ग्रस्त लोगों को आप ने उच्च स्वर में पुकार कर कहा—

'देहुरा मसीत सोई, पूजा औ निमाज ओई,
मानस सबै एक पै अनेक को प्रभाव है।
अल्लाह अभेख सोई पुरान औ कुरान ओई,
एक ही सरूप सबै, एक ही बनाव है।'

पुनः

'हिन्दू तुरक कोऊ राफजी इमाम शाफी,
मानस की जाति सबै एकै पहिचानबो।
कर्त्ता करीम सोई राजक रहीम ओई,
दूसरो न भेद कोई भूल भ्रम मानिबो।'

सम्भवतः बीसवीं शताब्दी के भारत वासियों को गुरु जी की उक्त घोषणा इतनी अद्भुत और विलक्षण अनुभव न होती हो किन्तु अनुमान कीजिये आज से तीन सौ वर्ष पहले जब हिन्दू मुसलमान को म्लेच्छ और मुसलमान, हिन्दू को काफिर मानता था, जब हिन्दू केवल मुसलमान की छाया पड़ने से ही

पतित हो जाना था। और जब मुसलमान समझता था कि हिन्दू केवल मुसलमानों की गुलामी के लिए ही पैदा हुए हैं, उसे यह विश्वास था कि किसी हिन्दू को किसी न किसी तरह दीन में ले आना, भारी पुण्य (सवाब) है। कोई हिन्दू यदि 'कलमा' पढ़ने से इन्कार कर दे तो 'कलमा' के अपमान के दोष में उस की हत्या कर देना शरीह की दृष्टि से उचित ही नहीं बल्कि पुण्य था। उन दिनों हिन्दू समाज में वर्णाश्रम-धर्म के फल स्वरूप अस्पृश्यता की भावना इतनी प्रबल थी कि वे सब लोग हिन्दू होते हुए भी एक दूसरे को छू लेने से भ्रष्ट हो जाते थे। इस प्रकार इनवर्ण, जाति, उपजाति, गोत्रादि में विभक्त लोगों का परस्पर खान पान, रीति रिवाज व्यवहारादि बिल्कुल अलग-अलग हो चुके थे। इस प्रकार के छिन्न-भिन्न और धार्मिक भेद-भाव के कारण विविध धड़ों में विभक्त भारतीय समाज में गुरु गोविन्द सिंह जी की उक्त घोषणा कैसी विलक्षण मालूम होती होगी कि 'शिवालय', मन्दिर और मस्जिदें सब परमेश्वर की पूजा के समानरूप से आदरणीय हैं। परमात्मा एक है जो सब का पिता है। हिन्दू और मुसलमान दोनों उस एक ही पिता की सन्तान होने के कारण परस्पर भाई-भाई हैं। तत्कालीन भारत में यह घोषणा निस्सन्देह एक अद्भुत साहस और आश्चर्य निर्भीकता का कार्य था, जो गुरु गोविन्द सिंह जी ने किया।

दिल्ली के चांदनी चौक में से, बलिदानी श्री गुरु तेग बहादुर का सिर उठा कर भाई जैता आनन्दपुर में जा पहुंचा। तत्कालीन हिन्दू इसे नीच जाति का अछूत मानते थे किन्तु गुरु जी ने उसे 'रंघरेटा गुरु का बेटा' कह कर अपनी छाती से लगा लिया। 'गुरु का बेटा' कहने का तात्पर्य था कि उसे अपना भाई स्वीकार

कर लिया, हिन्दू समाज के लोग जो जैना के साथ छू जाने से अपने-आप को भ्रष्ट मानने लगे थे उनके लिए गुरु जी की उक्त लीला कितनी विस्मयजनक होगी।

गुरु जी की इस अद्भुत् और क्रान्तिकारी विचार धारा से ब्राह्मण दुःखी, क्षत्री और वैश्य चिन्तित थे, राजपूत और हिन्दू राजागण आशंकित थे। मुगल सम्राट् इनको कुचल देने की योजना तैयार किये बैठा था। गुरु जी ने इन समस्त परिस्थितियों की अच्छी तरह जांच की, गंभीरता से इन दशाओं पर विचार किया। आप के सामने अकाल-प्रभु का, 'धर्म चलावन' तथा कुबुद्धि के कारण धर्म मार्ग से भटके हुए लोगों को सही मार्ग पर ले आने का, आदेश था। इसी लक्ष्य की पूर्त्ति के लिये ही तो शहीद पिता श्री गुरु तेग बहादुर गुरु-पद का उत्तरदायित्व आप को सौंप कर गए थे।

हिन्दू समाज के नेता ब्राह्मण जो अपने स्वार्थ के लिये वर्णाश्रम-धर्म को स्थायी बनाए रखना चाहता था, आपका शत्रु बना हुआ था। मुसलमान लोग अलग आप के अस्तित्व को, अपने खातमूल् नबी रसूल की प्रतिष्ठा के लिये, खतरा समझ रहे थे। इधर राजनीतिक क्षेत्र में भी छह पीढ़ियों से स्थापित विदेशी साम्राज्य के अधिकारी शासक आप को सल्तनत का एक भयंकर विद्रोही शत्रु समझते थे।

गुरु जी भी परिस्थिति से अचेत न थे। उन्हें मालूम था कि गुरु परंपरा में इस से पहले दो गुरुओं का बलिदान हो चुका है। प्रजा इतनी हताश और साहस-हीन हो चुकी थी कि हिन्दुओं के राजा और राजपूत आदि तक भी सिर ऊंचा उठा कर, सीना तान

कर चल सकने का साहस न कर सकते थे। वे यज्ञ-दानादि धर्म-कर्म भी यदि करते तो अपने घरों में छिप कर ही कर सकते थे।

गुरु जी ने बहुत कोशिशें कीं कि हिन्दू राजा तथा हिन्दू धर्म के नेता ब्राह्मण परिस्थिति का सही मूल्यांकन करें, अपने हीन-भाव और दुर्बलता को त्याग कर धर्म के शत्रु विदेशी साम्राज्य के विरुद्ध धर्म-युद्ध में उनको सहयोग दें। किन्तु विदेशी गुलामी ने उन के हृदय में से सत्य की भावनाओं को नष्ट कर दिया था। वे लोग कुबुद्धि और अविवेक के कारण भयातुर थे।

जहां अधर्म को धर्म एवं अन्याय को सदाचार माना जा रहा हो वहां किसी प्रकार के सुधार की आशा नहीं की जा सकती। उनको शिक्षा से समझा-बुझा कर सीधे मार्ग पर ले आने की आशा में ही बीस वर्ष व्यतीत हो गए। तत्कालीन भारतीय समाज की विचार-धारा पर. शिक्षा-दीक्षा, उपदेश, कविता पाठ, प्राचीन वीर-साहित्य के भाषा अनुवाद आदि के माध्यम द्वारा जितना प्रभाव डाला जा सकता था, डाला जा रहा था। परन्तु साथ ही साथ इधर सशस्त्र क्रान्ति के लिए भी प्रशिक्षण का काम जारी था। क्योंकि गुरु जी अपने धर्म मार्ग में जिस प्रकार की धार्मिक, सामाजिक एवं राजनीतिक क्रान्ति की आवश्यकता समझते थे, वह वर्त्तमान सामाजिक स्तर में असंभव थी।

दो सौ वर्ष पूर्व श्री गुरु नानक देव जी ने जिस आदर्श की नींव रखी थी, तत्पश्चात् आठ महान् गुरुओं ने जिसे विकसित किया. उस आदर्श की पूर्त्ति के लिये गुरु गोविन्द सिंह महाराज के प्रयत्न जारी थे। जब आप को यह दृढ़ विश्वास हो गया कि

हिन्दू-नेता ब्राह्मण, वर्ण-व्यवस्था के माया-जाल को त्याग कर मनुष्य जाति में समता का व्यवहार करने के लिये तैयार नहीं, न ही मुसलमान मौलवी यह समझने के लिये तत्पर हैं कि हिन्दू और मुसलमान सब एक ही पिता की सन्तान और परस्पर भाई हैं। हिन्दू-मुसलमान का विद्वेष तथा हिन्दू-हिन्दू में वैमनस्य क्रमशः बढ़ता ही जा रहा था। बलवान लोग निर्दोष, निर्बल मनुष्यों का अकारण रक्त बहा रहे थे। स्त्री-जाति का सतीत्व सुरक्षित न रह गया था, जनता भूख से मर रही थी। अत्याचारियों द्वारा प्रपीड़ित व्यक्तियों में हौसला न था कि वे दुष्टों का सामना करते।

फलतः अन्याय, बलात्कार और भ्रष्टाचार के वातावरण में न तो सर्व साधारण के हृदय में परमेश्वर का विश्वास रह गया था और न ही अत्याचार करने वालों में ईश्वर का कोई भय। अब क्रान्ति अनिवार्य थी।

श्री गुरु गोबिन्द सिंह जी ने एक नई जाति की नींव रखी। 'क्रान्तिकारी खालसा', हिन्दू मुसलमान दोनों से न्यारा तीसरा पन्थ, जिस के सैनिक केवल योद्धा ही नहीं थे, वरन् धार्मिक-योद्धा थे, वे साधू-सैनिक और सन्त-सिपाही थे। इन की वेष-भूषा अनूठी थी, इनका रूप और आकृति अद्भुत् तथा विलक्षण थी —

'साबक सूरत दस्तार सिरा।'

उनका एक ही आधार था—केवल अकाल। हृदय में गुरुवाणी का प्रकाश था। गुरु जी ने उन्हें खण्डा दोधारा का अमृत पिलाया, पांच-पांच छींटे अमृत के उनकी आंखों में दिये। उनके जीवन में एक अद्भुत परिवर्त्तन हुआ। अमृत ने उनको अमर कर दिया,

वे निर्भय हो गए। अब मृत्यु उनके लिए त्रास का कारण न रही, प्रत्युत वह उसे एक सुन्दर नवयौवना वधु के रूप में देखते थे।

खालसा दीन-दुःखी, दारिद्र और अबलाओं का आधार हुआ। अत्याचारी उस से कांपते थे। नाम का सिमरण और शुद्ध आचरण इस खालसा भवन के दो स्तम्भ थे। खालसा कलाधारी गुरु गोबिन्द सिंह जी की एक उच्च कला कृति था। यह निर्जीव कला न थी, प्रत्युत चैतन्य से परिपूर्ण सजीव-कला खालसा।

गुरु जी ने खालसा को निर्देष किया—

"तू खालसा है, तू वाहिगुरु का खालसा है, किसी मनुष्य का नहीं, तू सदैव वाहिगुरु का बना रह और अब समूचे विश्व में वाहिगुरु का राज्य स्थापित कर दे। इसी कार्य को सम्पन्न करने के लिये मैं संसार में आया था और उसी को करते रहने के लिये मैंने तुझे प्रकट किया है। मैंने तुझे अपना रूप दिया है, अपना सर्वस्व दिया है और सब से महान् वस्तु दी है तुझे 'अमृत !' अमृत पान कर के तू अमर हुआ है। तेरा शृङ्गार 'चढ़दी कला' (उन्नत मनोदशा) है। चढ़दी-कला धर्म का प्रतीक है, यह उनका चिन्ह है, जो वाहिगुरु के हो चुके हैं। तू वाहिगुरु का हो चुका है। प्रकाशित कर दे अपने हृदय में दीपक उस के नाम का, उसके आध्यात्मिक गुणों का जो 'सदा अंग संगे अभंगं विभूते' है। यह मनुष्य को सदा 'चढ़दी-कला' में रखने का साधन है। वही तुझे सदैव वाहिगुरु का खालसा बनाए रखेगा।

'पूर्ण ज्योति जगे घट में तब खालस ताहि निखालस जानैं।'

यह लक्ष्य था गुरु गोबिन्द सिंह जी का।

धर्म हेतु गुरुदेव पठाए।' गुरु जी ने इसे पूरा कर दिया। 'वाहिगुरु का खालसा' की रचना कर दी। अन्त में गुरु जी ने यह भी कहा—

शाश्वत-विजय 'फतह' भी वाहिगुरु की है। 'वाहिगुरु जी की फतह।'

ओजस्वी कवि श्री हरि बृजेश ने गुरु जी द्वारा प्रकट हुए खालसा के विषय में कहा है—

लै के दोतारा गावै संगत में 'वार आसा',
पकड़ दोधारा वाहे शत्रु सिर आरा है।
कड़छा लै हाथ बरतावत अतुट देग,
कठिन को दण्ड बाण बेद्ध करे पारा है।
भक्ति ज्ञान प्रेम औ वैराग की सुनावै कथा,
चढ़ कै तुरंग जंग देवै ललकारा है।
तत्वज्ञानी दानी योद्धा गृही त्यागी गुरु चेला,
वाह वाय धन्य धन्य जनक हमारा है।

यह 'ट्रैक्ट' निम्नलिखित महानुभावों ने 'संगत' में बिना मूल्य बांटा :–

१. भाई प्यार सिंह जवाहर सिंह,
न्यू क्लाथ मार्किट, अहमदाबाद ।

२. सरदार जसवन्त सिंह एन्ड कम्पनी,
न्यू क्लाथ मार्किट, अहमदाबाद ।

३. श्री गुरु सिंह सभा, जाम नगर ।

४. सरदार तारा सिंह
भारत इन्जिनियरिंग वर्क्स, जाम नगर ।

५. वेदी सुहिन्दर सिंह
10/23 वैस्ट पटेल नगर, नई दिल्ली ।

६. सरदार शमशेर सिंह
रिटायर्ड ज्वाइंट डायरेक्टर, राजस्थान, गंगा नगर ।

७. गुरुमत प्रचार सभा देहरादून ।

८. श्री कलगीधर सेवक जत्था, बीकानेर ।

९. सरदार राम सिंह मक्खन सिंह, शोरी क्लाथ मार्किट, रोहतक ।

१०. गुरुद्वारा समीप पैट्रोल पम्प, जिला नासिक ।

११. सरदार सुन्दर सिंह एन्ड सन्ज,
रेलवे रोड, अम्बाला शहर ।

१२. श्री गुरु तेग बहादुर परिषद् सस्राम, बिहार ।

——